Vol. 12, No.1 (January 2023) pp. 154-162 Sangeet Galaxy e-Journal [ISSN: 2319-9695]

UGC-CARE enlisted & indexed in EBSCO International Database of Journals

लोक की एक अद्भुत व अनोखी कल्पना- ''अष्टपदी हिरणचित्तल''

भास्कर दत्त कापड़ी
शोधार्थी, संगीत विभाग, डी0 एस0 बी0 परिसर,
कुमाऊँ विश्वविद्यालय नैनीताल, उत्तराखण्ड
संगीत अध्यापक केन्द्रीय विद्यालय, तामुलपुर, गुवाहाटी, आसाम
Email: iambhaskarkapri@gmail.com

सारांश

उत्तराखण्ड में भाद्रपद माह में शिव और पार्वती से सम्बंधित अनेक उत्सवों मेलों तथा नाटकों का आयोजन किया जाता है. इसके अन्तर्गत वर्षा कालीन कृषि से सम्बंधित एक नाट्योत्सव होता है जो सातूँ-आठूँ पर्व, हिलजात्रा महोत्सव, आठूँ, या गमारा/गमरा/गवँरा/गौरा के नाम से प्रसिद्ध है. आठूँ, अष्टमी या अठ्वाली शब्दों का मूल 'संस्कृत' का 'अष्टम' तथा 'अष्टमी' शब्द है. यहाँ आठूँ से तात्पर्य भाद्रपद माह में पड़ने वाली अष्टमी से है. गमारा गीत, खेल, ठुल-खेल, झोड़ा, चाँचरी, आदि गायन शैलियों का गायन भी इस पर्व की मुख्य विशेषता है. इस पर्व के मुख्य पात्र-हिरणचित्तल, महाकाली, लखियाभूत, बैलों की जोड़ी, गल्याबैल आदि हैं जो इस उत्सव को रंगारंग बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं. लोकरंजन के क्षेत्र में इस पर्व का महत्वपूर्ण स्थान है. लोक आम जनता के क्रिया-कलापों से उपजा है. लोक से उपजी ऐसी ही एक अनोखी व अद्भुत कल्पना का जीवन्त उदाहरण है - 'हिरणचित्तल'. यह आठूँ पर्व का मुख्य आकर्षण केन्द्र है. अतः प्रस्तुत शोध पत्र के माध्यम से अष्टपदीय हिरणचित्तल की रूप सज्जा व संरचना का सविस्तार अध्ययन तथा इसके सांगीतिक पक्ष पर प्रकाश डालने का प्रयास किया जा रहा है. मुख्यतः इस पर्व में प्रयोग होने वाले लोक वाद्य दम्वाँ/दमुवा/दमौ/ढोल पर बजने वाली तालों को भी लिपिबद्ध करने का प्रयास किया जा रहा है.

महत्वपूर्ण शब्द: हिरणचित्तल, लोकनाट्योत्सव, हिलजात्रा, सातूँ, आठूँ, गमारा, दम्वाँ, दमौ, खाम, पुछड़िया.

कृषि जीवन से जुड़ा यह पर्व पश्चिमी नेपाल तथा उत्तराखण्ड के कुमाऊँ क्षेत्र का एक विशिष्ट सांस्कृतिक लोक पर्व व लोकउत्सव है. चन्द्रकालीन ताम्रपत्रों से प्रतीत होता है कि यह उत्सव उत्तराखण्ड में ग्यारहवीं शताब्दी से पूर्व प्रारम्भ हो चुका था. स्थानीय बुजुर्ग बताते हैं कि यह पर्व नेपाल व तिब्बत में पहले से ही प्रचलित है.[1] उत्तराखण्ड के समान हिमांचल में भी इसके अन्य रूप देखने को मिलते हैं जिनमें कुछ-कुछ समानतायें देखने को मिलती हैं. शिमला में इस लोकनाट्य को 'हरिण' तथा कुल्लू-चम्बा के क्षेत्रों में 'हरिणान्तर' या 'हरिणेतर' एवं किन्नौर में 'हरिणफो' नृत्य कहा जाता है. इसका आयोजन होली के अवसर पर होता है.[2]

इस पर्वोत्सव में मुखौटों का बहुत बड़ा महत्व है. हिमालयी क्षेत्रों जैसे- लेह, लद्दाख, सिक्किम, अरूणांचल प्रदेश, तिब्बत, नेपाल, चीन, भूटान, दक्षिण पूर्व एशियायी देश, जापान आदि अनेक देशों के लोकनाट्योत्सवों में मुखौटा परम्परा का अद्भुत व आकर्षक प्रचलन है.[3] यह पर्व आध्यात्मिक, पौराणिक, व्यवहारिक, सामाजिक व सांगीतिक

सामंजस्य को दर्शाता है. कुमाऊँ व पश्चिमी नेपाल में श्रावण शुक्ल अमुक्ताभरण, भादो की सप्तमी तथा अष्टमी के दिन स्त्रियाँ गमारा दीदी, गौरा-मैसर (गौरा-महेश्वर) का पूजन करती हैं.[4]

हिरणचित्तल- इसका अर्थ है 'चितकबरा हिरन'. उत्तराखण्ड राज्य में हिरण चित्तल मुख्य रूप से कुमाऊँ मण्डल के अनेक क्षेत्रों में मनाया जाता है. कुमाऊँ में इसका मुख्य केन्द्र पिठौरागढ़ जनपद है. हिरणचित्तल भाद्रपद मास में शुक्ल पक्ष की अष्टमी 'आठूँ' के दिन या उसके कुछ दिन पश्चात बनाया जाता है. हिरणचित्तल में चार पुरुष भाग लेते हैं. इन्हीं के पदसंयोजन से 'अष्टपदीहिरण' तैयार होता है. ऐसी विचित्र व अद्भुत कल्पना लोक में ही देखी जा सकती है.[5] इसकी सम्पूर्ण संरचना निम्नलिखित बिन्दुओं के अंतर्गत देखी जा सकती है.

हिरणचित्तल की संरचना:

हिरणचित्तल का अग्रिम भाग (खाम)- अष्टपदी हिरण के अभिनय हेतु चार जवान पुरूष भाग लेते हैं. सबसे आगे वाला पात्र खड़ा होकर अभिनय करता है जिसे 'खाम' बोला जाता है. यह हिरणचित्तल का सबसे अग्रिम भाग है. यह भिन्न-भिन्न प्रकार की भाव-भंगिमाओं का प्रदर्शन कर चितकबरे रंग के वस्त्र पहने हुऐ बहुत ही मनमोहक और आकर्षक लगता है. गले में विभिन्न प्रकार के फूलों से बनी सुन्दर मालायें तथा सिर पर मोर पंखों के सींग बनाकर रंग बिरंगे गुब्बारों आदि से इसे सुसज्जित किया जाता है.[6] खाम के चेहरे में लगा हुआ मुखौटा कोई आम मुखौटा नहीं है जो आसानी से पहना जा सके. इस मुखौटे को सफेद कपड़े और अंग्रेजी के (वाय या वी) आकार के समान बनायी गयी लकड़ी की मदद से तैयार किया जाता है जिस कारण इसका मुख नाक की ओर ज्यादा नुकीला प्रतीत होता है.[7] लकड़ी को खाम के सर से नाक की सीध में पगड़ी के सहारे से कसकर बाँधा जाता है जो ठीक से बँधे ना होने पर सर में दर्द भी कर सकती है. लकड़ी पर लपेटे हुए कपड़े में ही काले रंग से हिरण की आँखों को उकेरा जाता है तथा मुंह में निंगाल (बाँस) की लकड़ी का एक छोटा टुकड़ा दाँत से दबाया होता है जिसका प्रयोग वह मुँह खोलने व बन्द करने में करता है.[8] उपर्यक्त वर्णन से यह स्पष्ट होता है कि खाम की सम्पूर्ण रूप सज्जा बहुत ही कठिन व कष्टदायी होती है.

हिरणचित्तल के अन्य भाग- खाम के अतिरिक्त तीन अन्य पुरूष हिरणचित्तल का पिछला भाग बनते हैं जो कमर से झुके होते हैं. तीनों अपने आगे वाले पात्र की कमर में बँधे हुए कपड़े या रस्सी के सहारे एक-दूसरे से जुड़े रहते हैं. इससे उत्पन्न होने वाले खिंचाव का सबसे अधिक प्रभव खाम पर पड़ता है. इसके दोनों हाथों में फूलों से सजी सुन्दर व मजबूत लाठियाँ होती हैं जो सन्तुलन बनाये रखने में मदद करती हैं. हिरण के सभी पाँवों में घुंघरू बँधे होने के कारण वाद्यों के साथ-साथ इनकी भी मधुर आवाज सुनाई देती है. खाम के पीछे लगे हुए तीनों पात्र हिरण का प्रदर्शन समाप्त होने तक कमर से 90^0 का कोण बनाकर झुके ही रहते हैं जो अत्यन्त कष्टदायी होता है.[9] इन्हें चितकबरे रंग की बड़ी चादर से घुटनों तक ढक दिया जाता है ताकि पदों का संचालन अच्छे से देखा जा सके. चादर वाला भाग हिरण के शरीर को प्रदर्शित करता है. अन्ततः यह एक विशाल व अद्भुत अष्टपदी हिरण का रूप ले लेता है जो विभिन्न प्रकार की भाव-भंगिमाओं का प्रदर्शन कर दर्शकों का मनोरंजन करता है.[10]

हिरणचित्तल का पृष्ठ भाग (पुछड़िया)- यह कुमाऊँनी बोली का शब्द है जिसका अर्थ है पीछे लगने वाला या पूँछ वाला भाग. पुछड़िया हिरणचित्तल का सबसे अन्तिम भाग है जिसके कमर में 'चौरगाय' की पूँछ बाँधी जाती है. पुछड़िया बहुत ही फुर्तीला होता है. नृत्य के समय यह अपने आगे के पात्रों से पाँव मिलाते हुए अपने दोनों पाँव

पीछे की तरफ फेंकता है. दर्शक पुछड़िया के पद संचालन को देखकर स्वयं के बचाव हेतु दूरी बनाये रखते हैं. इस का लात मारना दर्शकों को अत्यधिक प्रसन्नचित्त करता है जिससे हास्य रस की उत्पत्ति होती है. हास्य रस का मनोरंजन के क्षेत्र में महत्वपूर्ण स्थान है. इससे यह प्रमाणित होता है कि लोकनाट्य हिरणत्तिल में आध्यात्मिकता तथा सामाजिक आस्था के साथ-साथ हास्य-विनोद पैदा करने की भी अद्भुत क्षमता होती है.[11]

चौरगाय- 'चौरगाय' को झब्बू, चँवरी, चमरी, चौरी, बनचौरी, वाल प्रिय, व्यजनी, गिरिप्रिया, ग्याक, याक, सुर ही तथा सुरागाय भी कहते हैं. सुरागाय अर्थात देवताओं की गाय. तिब्बत में इसे दोंग, ब्रोंग, धोंग, बुबुल आदि कहते हैं. इसका वैज्ञानिक नाम 'Bos Grunnies' है. यह तिब्बती पठार, युन्नान, सिचुआन, उत्तरी म्यांमार, मंगोलिया, साइबेरिया, नेपाल तथा भारत के उत्तरी क्षेत्रों में 15-20 हजार फुट की ऊँचाई पर पायी जाती है. इसकी पूँछ काफी घनी, गोल और झबरी होती है जिसे 'चवँर' कहा जाता है. चौरगाय की पूँछ अर्थात चवँर को बहुत पवित्र माना जाता है. अतः इसका प्रयोग मन्दिरों तथा धार्मिक स्थलों में होता है.[12]

पुतारि- 'पुतारि' शब्द का सम्बन्ध खेतों में काम करने वाली महिलाओं से है. पहाड़ में महिलाओं के ऊपर काम की बहुत बड़ी जिम्मेदारी होती है. खेतों में गुड़ाई, नेलाई, खाद डालना, रोपाई के समय पौधौं को रोपना, खेत में आये बैलों के लिये घास, 'दौ' (विभिन्न अनाजों को मिलाकर पकाया गया आहार) इत्यादि का इन्तजाम करना तथा खेतों में काम करने वाले सभी लोगों के लिए भोजन की व्यवस्था जैसे अनेक कार्य महिलाओं को ही करने होते हैं. कार्य को शीघ्र करने तथा मनोरंजन हेतु महिलायें हुड़किया के साथ हुड़के की थाप में गीत भी गाती हैं. इससे यह सिद्ध होता है कि हमारी संस्कृति को सहेजने, सँवारने तथा संरक्षण करने में महिलाओं का अतुलनीय योगदान है. इस की झलक हम हिरनचित्तल नृत्य में दो पुतारियों के माध्यम से देखते हैं. पुतारियाँ हिरण के दोनों ओर नृत्य करते हुए नाट्य को रोचक बनाती हैं तथा हिरण की पीठ पर चौरगाय की पूँछ फेरते हुए पशु-प्रेम को भी व्यक्त करती हैं.

हिरणचित्तल का सामाजिक परिपेक्ष - कुमाऊँ अंचल में हिरणचित्तल को लोक का देवता माना गया है. यह लोक में जनमानस की आस्था का प्रतीक भी है. लोकपर्व आठूँ में बनाये जाने वाले अष्टपदी हिरण के प्रांगण में पहुँचते ही सभी दर्शक हिरणचित्तल महाराज का जयकारा लगाते हैं. प्रगाढ़ आस्था होने के कारण हिरणचित्तल महाराज के दिव्य दर्शन होते ही सभी दर्शकों के रौंगटे खड़े हो जाते हैं. हिरन केवल सातूँ-आठूँ में ही नहीं बल्कि उत्तराखण्ड के कुमाऊँ अंचल में पूजे जाने वाले लोक देवता हरूसैमज्यू, कालसिन, छुरमल आदि की 'बाईसी', 'चौरासी' (दो या चार रातों तक चलने वाली पूजा) में भी बनाया जाता है. इस प्रकार की पूजाओं में जब जगरिया द्वारा देवताओं की गाथा गायी जाती है तो 'डंगरिया' (जिन व्यक्तियों के शरीर में लोक देवता अवतरित होते हैं) 'ख्याला' (डंगरिया द्वारा देवताओं की जीवनी का नाचते हुए नाट्य रूपान्तरण) खेलते हैं. जगरिया द्वारा जिस रात बकरियों का ग्वाल बनने की कथा गायी जाती है उसी दिन हिरन बनाया जाता है जिसमें गाँव के बुजुर्ग भी हिस्सा लेते हैं और बाजे के साथ नाचते हैं. यह हिरण आठूँ के हिरण की तरह सुसज्जित नहीं होता और इसमें चार या इससे भी अधिक पुरूष भाग ले सकते हैं. यह आस्था और मनोरंजन दोनों रूपों में देखा जाता है. उत्तराखण्ड वासियों के लिये यह बड़े सौभाग्य की बात है कि हिरण को लोक-देवता के साथ-साथ राज्य-पशु का दर्जा भी दिया गया है.[13]

हिरणचित्तल का सांगीतिक अभिनय- हिरनचित्तल अभिनय के साथ-साथ नृत्य करते हुए दम्वाँ में बजने वाली लोक तालों में एक साथ पाँव से पाँव मिलाकर नाचता है. खाम दाँये पाँव को बाँई ओर फिर बाँये पाँव को दाहिनी ओर करते हुए नृत्य करता है. पीछे लगे अन्य तीन व्यक्ति भी खाम के पद संचालन का ही अनुसरण करते हैं जो देखने में आश्चर्य पैदा करता है. अष्टपदी हिरण द्वारा कुलांचे भरना, तीव्र गति से दौड़ना, सींग से खुजलाना, घुटनों के बल बैठना और अचानक चौकन्ना होकर इधर-उधर देखना आदि विभिन्न प्रकार के अभिनय किये जाते हैं.[14] यह दम्वाँ में बजने वाली ताल के साथ अभिनयपूर्ण नृत्य करता है. प्रयाग जोशी जी का कहना है कि इसमें वाद्य वादन 'ग्यूलड़िया ध्वनि' से चलता हुआ 'धूनीनमना ताल' में पहुँचता है. इस तोड़ की बाईस ड्योड़ियाँ (आवृत्तियाँ) कही गयी हैं.

हिरनचित्तल जिस ताल में नृत्य करता है वह दम्वे पर बजती है. दम्वे के बोलों को लिपिबद्ध करने के साथ-साथ यहाँ पर दम्वे के बोलों को तबले की लिपि में परिवर्तित कर लिपिबद्ध करने का प्रयास किया गया है. इन तालों का क्रमानुसार वर्णन निम्नलिखित है.

हिरनचित्तल के नृत्य में प्रयुक्त होने वाली ताल-

मात्रा	1 2	3 4 5 6	7 8 9	10 11 12
दम्वाँ	घ्यान् ऽ	क्यान क्यान क्यान ऽक्ड़	घ्यान क्यान ऽक्ड़	घ्यान क्यान ऽक्ड़
तबला	धा ऽ	ता ता ता ऽक्ड़	धा ता ऽक्ड़	धा ता ऽक्ड़
ताली/खाली	*	0	2	3
दम्वाँ	घ्यान् ऽ	क्यान क्यान क्यान ऽक्ड़	घ्यान क्यान ऽक्ड़	घ्यान् घ्यान् ऽ
तबला	धा ऽ	ता ता ता ऽक्ड़	धा ता ऽक्ड़	धा धा ऽ
ताली/खाली	*	0	2	3
दम्वाँ	घ्यान् ऽ	क्यान क्यान क्यान ऽक्ड़	घ्यान क्यान ऽक्ड़	घ्यान् घ्यान् ऽ
तबला	धा ऽ	ता ता ता ऽक्ड़	धा ता ऽक्ड़	धा धा ऽ
ताली/खाली	*	0	2	3
दम्वाँ	क्यान् ऽक	क्यान क्यान क्यान ऽक्ड़	क्यान क्यान ऽक्ड़	क्यान क्यान ऽक्ड़
तबला	ता ऽक	ता ता ता ऽक्ड़	ता ता ऽक्ड़	ता ता ऽक्ड़
ताली/खाली	*	0	2	3
दम्वाँ	क्यान् ऽक	क्यान क्यान क्यान ऽक्ड़	क्यान क्यान ऽक्ड़	घ्यान् घ्यान् ऽ
तबला	ता ऽक	ता ता ता ऽक्ड़	ता ता ऽक्ड़	धा धा ऽ
ताली/खाली	*	0	2	3
दम्वाँ	घ्यान् ऽघ	घ्यान घ्यान घ्यान ऽघ्ड़	घ्यान घ्यान ऽघ्ड़	घ्यान घ्यान ऽ
तबला	धा ऽग	धाधा धा ऽग्ड़	धा ता ऽग्ड़	धा धा ऽ
ताली/खाली	*	0	2	3

दम्वाँ	घ्यान् ऽ	क्यान क्यान क्यान ऽक्ड़	घ्यान क्यान ऽक्ड़	घ्यान क्यान ऽक्ड़
तबला	धा ऽ	ता ता ता ऽक्ड़	धा ता ऽक्ड़	धा ता ऽक्ड़
ताली/खाली	*	0	2	3

अगर इस ताल लिपि में 'झाली' (लोक घन वाद्य) को भी लिपिबद्ध किया जाये तो इस ताल को निम्नलिखित प्रकार से लिखा जायेगा- इस ताल में झाली केवल सातवीं, दसवीं और पहली मात्रा में ही बजती है. अतः झाली एक आवर्तन में केवल तीन बार ही बजेगी. 'घ्यान' के साथ 'झाली' की आवाज मिलने पर 'झ्यान' और 'क्यान' के साथ 'च्यान' की आवाज आती है.[15]

मात्रा	1 2	3 4 5 6	7 8 9	10 11 12
दम्वाँ	झ्यान् ऽ	क्यान क्यान क्यान ऽक्ड़	झ्यान् क्यान ऽक्ड़	झ्यान् क्यान ऽक्ड़
ताली/खाली	*	1	2	3
दम्वाँ	झ्यान् ऽ	क्यान क्यान क्यान ऽक्ड़	च्यान क्यान ऽक्ड़	झ्यान् घ्यान् ऽ
ताली/खाली	*	1	2	3

जिस प्रकार तबले में कायदे के पल्टे किये जाते हैं उसी प्रकार लोक ताल में भी ताल की मूल रचना को केन्द्र मानकर पूरी ताल को अनेक रुपों में उलट-पलट कर कई रूपों में बजाया जाता है. तत्पश्चात जो चाल अभी तक चल रही थी उसकी धीरे-धीरे लय बढ़ायी जाती है और दूसरी चाल अर्थात आड़ में प्रवेश के लिये पहली चाल के ही अन्तिम तीन बोलों (घ्यानक्यानऽक्ड़) का आवर्तन बनाकर ताल की गति को अतिद्रुत कर दिया जाता है. यह लय बहुत ही कम समय के लिये बजायी जाती है.[16] इसके बजते ही हिरण अत्यधिक फुर्तीला हो जाता है और जोर-जोर से पाँव छटपटाकर उछलने लगता है.

दम्वाँ	घ्यान क्यान ऽक्ड़	घ्यानक्यानऽक्ड़	घ्यानक्यानऽक्ड़	घ्यानक्यानऽक्ड़
तबला	धा ता ऽक्ड़	धा ता ऽक्ड़	धा ता ऽक्ड़	झ्यान क्यानऽक्ड़
दम्वाँ	झ्यान क्यान ऽक्ड़	झ्यानक्यानऽक्ड़	झ्यानक्यानऽक्ड़	झ्यान क्यानऽक्ड़
तबला	धा ता ऽक्ड़	धा ता ऽक्ड़	धा ता ऽक्ड़	धा ता ऽक्ड़

मात्र पाँच से सात सेकेंड में ही ताल बदल जाती है और लय और अधिक बढ़ जाती है. जैसे ही ताल बदलती है वैसे ही हिरणचित्तल भी ताल के साथ-साथ तेजी से आगे की ओर फिर पीछे की ओर पूरे प्रांगण में बहुत ही छोटे-छोटे कदमों के साथ द्रुत गति से दौड़ने लगता है. यह ताल भी बहुत ही कम समय के लिए बजती है. इस ताल के लगभग चार या आठ आवर्तन बाद देवतारी बाजा बजाया जाता है.[17]

(घ्यान क्यान ऽक्ड़) के बाद दम्वाँ पर बजने वाली ताल निम्नलिखित है-

1	2	3	4	5	6	7	8
घ्यान्	घघ्या	नघ	घ्याना	घ्यान	कक्या	नक	क्याना
घ्याना	घघ्या	नाघ	घ्याना	घ्याना	कक्या	नाक	क्याना
*				0			

चाल अति द्रुत में होने के कारण बहुत ही ऊर्जावान होती है. यह ताल तबले में बजाने पर भजन के ठेके की 'रौ' जैसी प्रतीत होगी. ताल के बजते ही पूरा प्रांगण हिरण्चित्तल महाराज के जयकारों व शंख-घन्टियों की ध्वनि से गूँजने लगता है. इस उर्जा से लोक देवता अवतरित हो जाते हैं और डंगरिया सभी भक्तों को आशिर्वाद देते हैं. जैसे ही इस पवित्र स्थल पर देवता अवतरित होते हैं और 'ढोली' फिर से ताल बदलकर देवतारी बाजा बाजा बजाने लगता है जिसकी लय अभी तक बजने वाली सभी तालों से अधिक होती है और इस ताल को सभी ढोली (दम्वाँ बजाने वाले कलाकार) अपनी पूरी ताकत लगाकर बजाते हैं.[18] इस बाजे में देवता नाचते हुए सभी को आशिर्वाद देते है. देवतारी पूरी होने के बाद अंत में खेल, झोड़ों, चाँचरी, चालि-धमारि, डंगडोल, उल्टी न्यौली आदि से समापन किया जाता है.

देवतारी बाजा

1	2	3	4
ऽ	ऽघ	घ्यान्न्	घ्यान्न्
घ्यान्ना	कुक्ड़ी	घ्यान्ना	घ्यान्ना
घ्यान्ना	कुक्ड़ी	घ्यान्ना	घ्यान्ना
घ्यानघ	नाघना	घ्यान्ना	घ्यान्ना
घ्यान्ना	कुक्ड़ी	घ्यान्ना	घ्यान्ना
*		0	

निष्कर्ष:

पहाड़ों में पलायन तथा लोगों की रूचि कम होने के कारण हमारी लोक संस्कृति व परम्परायें धीरे-धीरे विलुप्त होती जा रही है. 'आठूँ' की बात करें तो लगभग चार से पाँच दशक पूर्व तक इस उत्सव का प्रत्येक व्यक्ति के हृदय से अकल्पनीय गहरा नाता था. आठूँ एक ऐसा उत्सव है जिसमें समाज की सम्पूर्ण संस्कृति का अद्भुत रूप से समावेश देखने को मिलता है. ज्यादा नहीं! अगर केवल एक पीढ़ी पीछे का अध्ययन किया जाय तो बहुत ही स्पष्ट रूप से दिखायी पड़ता है कि हमने क्या खोया और कितना खोया और साथ में क्या नया पाया. उन्नीसवीं शताब्दी तक नाट्य प्रस्तुत करने के लिए अच्छे वस्त्रों, मुखौटों तथा अन्य वस्तुओं का अभाव जरूर था लेकिन बच्चे से बूढ़ा, प्रत्येक वर्ग व वर्ण का व्यक्ति पूरे वर्षभर इस त्यौहार की आश लगाये रहता था. अनेक प्रकार की गायन शैलियाँ, नृत्य, नाट्य और भांति-भांति के वाद्य-यन्त्रों के संगीत से परिपूर्ण ऐसा उत्सव जिसमें गाँव का बच्चे से बूड़ा प्रत्येक व्यक्ति मझा हुआ कलाकार होता और बढ़-चढ़कर अपनी भागीदारी देता था. गायकी में सभी निपुण होते थे क्योंकि वह उस लोक में ही रचा बसा होता था. यही मूल कारण था कि वह आनन्द के चरमोत्कर्ष व प्रगाड़ आस्था के साथ आत्मीयता से इस उत्सव में भाग लेता. इस उत्सव की इतनी महत्ता थी कि घर के प्रत्येक व्यक्ति के

लिए एक महिने पहले से ही नये वस्त्र सिलवाने की तैयारियाँ की जाती थी. यहाँ तक कि दर्जी कपड़ों का माप लेने गाँव में ही आजाया करता था. एक महिने पहले से ही स्त्री व पुरूषों द्वारा आठूँ प्रांगण में एकत्रित होकर देर रात तक विभिन्न लोक गायन शैलियों का गायन होता जिसमें रामायण, महाभारत जैसी गाथाऐं भी शामिल हैं.[19] बड़े-बड़े खेलकार गीतों में ही सवाल-जवाब कर प्रतिस्पर्धा करते व हार-जीत भी होती थी. छोटे बच्चे केले के थूम, कागज के गत्तों में मुखौटों की आकृति बनाकर मन्दिरों के लाल, पीले निसाण (ध्वजा) को शरीर में लपेटकर आठूँ में बनाये जाने वाले पात्रों का अभिनय करते थे. छिप-छिपाकर हिरन बनते और मुह तथा डब्बों से वाद्ययन्त्रों में बजने वाली हिरणचित्तल के धुन की हूबहू नकल उतारते. लोगों का इस उत्सव से यह नाता आज भी है लेकिन कहते हैं कि परिवर्तन ही संसार का नियम है. वर्तमान समय में आधुनिकी चकाचौध व भागदौड़ भरी दिनचर्या के कारण यह नाता धूमिल सा होने लगा है. धीरे-धीरे समय ना दे पाने के कारण आज का समाज ठुल खेल, उल्टी न्यौली, गमारा गीत आदि जैसी कठिन गायन शैलियों को गाने में असमर्थ होता जा रहा है. अनेक गाँवों में इन परम्परागत गीतों को 'बखाड़ने' (बखान करने वाला कलाकार) वाले लोग ही नहीं रहे. अब नई पीड़ी को केवल धुनें याद रह गयी हैं शब्द नहीं. लोगों के पास इतना समय ही नहीं कि वह सुन-सुनकर सीख सकें.

अतः मुख्य रूप से ध्यान देने वाली बात यह है कि परम्परागत गायन शैलियाँ लुप्त होती जा रही हैं. हाँ वर्तमान में इन्टरनेट की बदौलत बहुत सी चीजें संग्रहित हो रही हैं और लोक संस्कृति में रूचि रखने वाले लोगों में आदान प्रदान भी हो रही हैं. भले ही वह वर्तमान में उसका हिस्सा नहीं होते. लेकिन जो चीजें विलुप्त हो चुकी हैं उनका क्या? शायद वो अब कभी वापस नहीं आ सकती हैं. इसके विपरीत इस पर्व का नाट्य पक्ष जिसमें मुखौटा परम्परा को वर्तमान समय में बल मिलता जा रहा है और यह परम्परा आधुनिकता के सहारे दिनो-दिन और समृद्ध होती जा रही है. वर्तमान समय में नाट्य की सभी सामग्री शहरों से मँगवायी जाती है. जिन जगहों में यह परम्परा गौड़ रूप में विद्यमान थी आज वह समाज भी इस परम्परा को और समृद्ध बनाने की होड़ में लगा हुआ है. हालांकि अपवाद स्वरूप कुछ गाँव एसे भी हैं जहाँ पलायन के कारण लोग ही नहीं रहे तो परम्परा क्या रहेगी. दो दशक पहले मुखौटों, वस्त्रों एवं आभूषणों की भारी कमी थी जो वर्तमान समय में नहीं है. पचास साल पहले जैसा हिरणचित्तल बनायाजाता था, उसकी तुलना मेंआज अच्छेवस्त्रों व अनेक प्रकार के साजो-सामान की बदौलत उससे कई गुना बेहतर बनाया जा रहा है. आज का युवा समाज रूड़ीवादी विचारधारा से ग्रसित नहीं है जिस कारण वह दिन पर दिन उन्नति पथ पर है. फलस्वरूप हिरणचित्तल नृत्य को और बेहतर बनाने के लिए नये-नये प्रयोग किये जा रहे हैं . नयी-नयी नृत्य मुद्राओं का आविष्कार किया जा रहा है. इस परम्परा को और अधिक आकर्षक बनाने के लिए नाना प्रकार के परिधानों को जोड़ा जा रहा है. अनेक प्रकार के हल्के मुखौटों का प्रयोग किया जा रहा है जिसमें प्लाई, प्लास्टिक, रबर आदि का उपयोग किया जा रहा है. पहले लकड़ी के मुखौटों का अधिक प्रयोग किया जाता था जो वजन में भारी भी होते थे. हालांकि मुखौटों का वजन कम हो इसके लिये हमारे बुजुर्ग 'खिन्ने' की लकड़ी का प्रयोग करते थे. इसके बावजूद भी आज की तुलना में वह भारी ही हैं. आज भी कुछ लोग 'खिन्ने' की लकड़ी के मुखौटों को बना रहे है.

हमें अपनी लोक परम्पराओं, लोक कलाओं का संरक्षण करना होगा और इनके प्रचार-प्रसार में भागीदारी निभानी होगी. कुछ संस्थायें हैं जो यह कार्य कर रही हैं. उत्तराखण्ड के पिथौरागढ़ जनपद में स्थित पर्वतीय सांस्कृतिक एवं साहित्यिक कला समिति (नवोदय पर्वतीय कला केन्द्र) लगभग 1995 से हिलजात्रा को नृत्य नाटिका का स्वरूप प्रदान करके बहुआयामी राष्ट्रीय एवं अन्तराष्ट्रीय मंचों में प्रदर्शन कर प्रचार प्रसार कर रही है.

हाल ही में ओ0 एन0 जी0 सी0 एवं भाव राग ताल नाट्य अकादमी पिथौरागढ़ ने अपने प्रयासों से पिथौरागढ़ जनपद के बसौड़ और बोकटा गाँव की हिलजात्रा का पुनर्जीवित व दस्तावेजीकरण का कार्य किया है. वर्तमान समय में गाँव के युवा भी कर्मठ व जागरूक हो गये हैं. यह अनेक महोत्सवों व सांस्कृतिक प्रतिस्पर्धाओं में पूरी टीम के साथ भाग लेते हैं. और उत्तराखण्ड के साथ-साथ अन्य प्रदेशों में भी 'आठूँ परम्परा' का प्रचार-प्रसार करने का भरपूर प्रयास कर रहे हैं. वर्तमान में मीडिया का भी प्रचार-प्रसार हेतु महत्वपूर्ण योगदान है. यह उत्सव जनमानस को प्रकृति से जोड़ता है. यह हमारा कर्तव्य है कि हम अपनी परम्पराओं का सम्मान करें और अपनी भागीदारी देकर इन्हें अगली पीढ़ी को हस्तानान्तरित करने का भरपूर प्रयास करें.

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची:

1. पोखरिया देव सिंह, कुमाऊँनी लोक साहित्य एवं कुमाऊँनी साहित्य, पृष्ठ. 60
2. शर्मा डी0 डी0, उत्तराखण्ड के लोकोत्सव व पर्वोत्सव, पृष्ठ. 96-106.
3. बिष्ट हेमराज सिंह, संयोजक/निर्देशक, नवोदय पर्वतीय कला केन्द्र पिथौरागढ़, उत्तराखण्ड साक्षात्कार के आधार पर.
4. उपाध्याय शिरीष- ब्राह्मण/पुरोहित मध्य हिमालयी क्षेत्र कनालीछिना, पिथौरागढ़, उत्तराखण्ड- साक्षात्कार के आधार पर.
5. आलम जहूर- प्रसिद्ध रंगकर्मी, नैनीताल, उत्तराखण्ड- साक्षात्कार के आधार पर.
6. सिरोला प्रदीप- लोक कलाकार, ग्राम- सिरोली, जिला-पिथौरागढ़, उत्तराखण्ड-साक्षात्कार के आधार पर.
7. कापड़ी अंकित- लोक कलाकार/हिरणचित्तल के खाम का पात्र, ग्राम-सतगढ़, जिला- पिथौरागढ़, उत्तराखण्ड-साक्षात्कार के आधार पर.
8. कापड़ी संजय- लोक कलाकार/हिरणचित्तल के खाम/पुछड़िया का पात्र, ग्राम-सतगढ़, जिला-पिथौरागढ़, उत्तराखण्ड- साक्षात्कार के आधार पर.
9. कापड़ी राजेन्द्र- सांस्कृतिक कला संयोजक/निर्देशक, ग्राम-सतगढ़, जिला-पिथौरागढ़ उत्तराखण्ड- साक्षात्कार के आधार पर.
10. कापड़ी गणेश दत्त- खेलकार/भूतपूर्व खामकेपात्र, ग्राम-सतगढ़, जिला-पिथौरागढ़, उत्तराखण्ड-साक्षात्कार के आधार पर.
11. कापड़ी कृष्णानन्द- पुछड़िया के पात्र, ग्राम-सतगढ़, जिला-पिथौरागढ़, उत्तराखण्ड-साक्षात्कार के आधार पर.
12. जरनलिस्ट डा0 लखेड़ा हरीश चन्द्र- साक्षात्कार के आधार पर.
13. कुमार धीरज, लोक साहित्यकार/लोक कलाकार/लोक वाद्य वादक, ग्राम-उर्ग, जाजर देवल, पिथौरागढ़, उत्तराखण्ड- साक्षात्कार के आधार पर
14. कुमार धीरज, लोक साहित्यकार/लोक कलाकार/लोक वाद्य वादक, ग्राम-उर्ग, जाजरदेवल, पिथौरागढ़, उत्तराखण्ड- साक्षात्कार के आधार पर.
15. बिष्टहेमराज सिंह-संयोजक/निर्देशक नवोदय पर्वतीय कला केन्द्र पिथौरागढ़, उत्तराखण्ड- सक्षात्कार के आधार पर.
16. राम रतन, लोक वाद्य दम्वाँ वादक- सक्षात्कार के आधार पर.
17. राम रतन, लोक वाद्य दैन दम्वाँ वादक- सक्षात्कार के आधार पर.

18. राम जगदीश, लोक वाद्य बौं दम्वाँ/झाली वादक- सक्षात्कार के आधार पर.
19. कापड़ी कैलाश, पूर्व ग्राम प्रधान/सांस्कृतिक कला संयोजक/निर्देशक, ग्राम-सतगढ़, जिला-पिथौरागढ, उत्तराखण्ड- साक्षात्कार के आधार पर.

1- https://youtu.be/udTp4aq1xt4
2- https://youtu.be/eTy8_AyItZ8
3- https://youtu.be/u9AcXoaRiGk
4- https://youtu.be/1fGFWNqTqkU
5- https://youtu.be/fRyyqDPy0J0
6- https://youtu.be/1-YRcgsYKx0
7- https://youtu.be/-7lAP5K-X7A
8- https://youtu.be/Ol9PAyr3Ngk